पुराण पुरुष हैं और आप ही सनातनधर्म के रक्षक अविनाशी भगवान् हैं, ऐसा मेरा मत है।।१८।।

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्।।१९।।

अनादि मध्य अन्तम्=आदि, मध्य और अन्त से रहित; **अनन्त**=अपार; **वीर्यम्**=कीर्ति से युक्त; **अनन्तबाहुम्**=अनन्त हाथ वाले; **शशिसूर्यनेत्रम्**=चन्द्र-सूर्यरूप नेत्र वाले; **पश्यामि**=देखता हूँ; **त्वाम्**=आपको; **दीप्त**=प्रज्वलित; **हुताश-वक्त्रम्**=अग्निमय मुख वाला; **स्वतेजसा**=अपने तेज से; **विश्वम्**=जगत् को; **इदम्**=इस; **तपन्तम्**=तपायमान करते हुए।

अनुवाद

देव! आप आदि, अन्त और मध्य से रहित आदिपुरुष हैं। आपकी भुजाओं और सूर्य-चन्द्ररूप नेत्रों की अनन्त संख्या है और अपने तेज से आप इस सम्पूर्ण विश्व को तपायमान कर रहे हैं।।१९।।

तात्पर्य

श्रीभगवान् के छहों ऐश्वर्यों की कोई सीमा नहीं है। यहाँ पर और अन्यत्र भी इनकी पुनरुक्ति हुई है। शास्त्रों के अनुसार, श्रीकृष्ण की कीर्ति का पुनः-पुनः गान करना साहित्यिक दोष नहीं माना जाता। मोह, विस्मय अथवा महान् भावविभोरता में वाक्यों की बारम्बार आवृत्ति हो ही जाती है। यह दोष नहीं है।

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्।।२०।।

द्यौ=स्वर्गीय लोगों; **आपृथिव्योः**=पृथ्वी के; **इदम्**=इस; **अन्तरम्**=बीच का आकाश; **हि**=निस्सन्देह; **व्याप्तम्**=परिव्याप्त; **त्वया**=आपके द्वारा; **एकेन**=एक; **दिशः**=दिशाएँ; **च**=तथा; **सर्वाः**=सम्पूर्ण; **दृष्ट्वा**=देखकर; **अद्भुतम्**=अद्भुत; **रूपम्**=रूप को; **उग्रम्**=भयंकर; **तव**=आपके; **इदम्**=इस; **लोकत्रयम्**=तीनों लोक; **प्रव्यथितम्**=अति व्यथा को प्राप्त हो रहे हैं; **महात्मन्**=हे महापुरुष।

अनुवाद

सम्पूर्ण आकाश, विविध लोक और उनका बीच का अन्तरिक्ष, यह सब एक आप से ही परिव्याप्त हो रहा है। हे महात्मन्! आपके इस भयंकर रूप को देखकर संपूर्ण लोक अति व्यथा को प्राप्त होते हैं।।२०।।

तात्पर्य

इस श्लोक में **द्यावापृथिव्योः** (स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का सम्पूर्ण